International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 04, No. 01(I), January - March, 2022, pp. 219-225

परसाई साहित्यः 'पाखण्ड का अध्यात्म' में अन्तर्वस्तु के स्तर पर व्यंग–लेखन

डॉ. मोहन लाल शर्मा*

प्रस्तावना

'पाखण्ड का अध्यात्म' में व्यंग्य लेखन का स्वर तो प्रधान है, साथ ही साथ जीवन चिन्तन का भी प्रयास किया गया है। तात्कालिक सन्दर्भ से उठे ये निबन्ध पूर्ण रूपेण साहित्य, राजनीति, धर्म, संस्कृति, परम्परादर्शन आदि की विसंगतियों पर तार्किक और वैज्ञानिक टिप्पणियाँ हैं।

इसमें संग्रहित व्यंग्य निबन्ध भारतीय जीवन के भीतर घट रही राजनैतिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों से सम्बंधित हैं। "दोहरी मूल्यनीति, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक अनैतिक प्रारूप है, जो स्वयं पूंजीवादी नैतिकता के विरुद्ध है। "दैनिक जीवन के प्रयोग की वस्तुएं एवं उनका अभाव और आसमान को छूती कीमत का असर जीवन पर पड़ता है। चाहे कीमत के अंतर का भाव कम ही हो परन्तु एक साधारण परिवार के लिए तो वो भी दुर्लभ है।

इसका जिक्र 'पाखण्ड का अध्यात्म' में संकलित निबन्ध 'अभाव की दाद' में भगतजी कहते हैं–"मेरे असत्य के रासायनिक प्रयोग चल रहे हैं। मैं मिट्टी से शक्कर बनाने की विधि खोज लूंगा।'' इसी तरह राजनैतिक अवसरवादिता पर यह व्यंग्य देखिये – "राजनैतिक अवसरवाद की पूंजी जब उसी फेफड़े की सांस से बजती है, जिसमें सत्ता का दम हो, मतवाद, सिद्धान्त और आइडियालॉजी सिद्धान्त का कोई उपयोग नहीं रह जाता।''

अंधविश्वास तथा समाज में व्याप्त पाखण्ड देखिये–"यज्ञ में वास्तव में अन्न, घी, शक्कर नहीं जलते, विवेक–स्वाहा, बुद्धि–स्वाहा, तर्क–स्वाहा, विज्ञान–स्वाहा।''

धार्मिक पाखण्ड

"मजहब इन्सान को सुसँस्कृत न बनाकर बर्बर बना दे तो मजहब को क्यों गले में लटकाये रखा जाता है।"

साम्प्रदायिकता को किस प्रकार काटा गया है, देखिये–"हम दूसरी जातियों पर थूके तो वह अपने ही ऊपर गिरेगा। हमारा सौभाग्य यह है कि हमारे शंकराचार्य उन्माद पैदा नहीं कर सकते जैसा की अयातुल्ला और इमाम कर सकते हैं । उन्माद बाला साहब देवरस तो पैदा कर ही सकते हैं।''

'पाखण्ड का अध्यात्म' में परसाईजी ने सामाजिक सन्दर्भ में व्याप्त पूंजीपतियों की व्यभिचारी, विलासिता की प्रवृत्ति को कौशल के साथ उभारा है। उदाहरणार्थ–"चरित्रवान और चरित्रहीन में कुल इतना फर्क है कि एक पकड़ा नहीं जाता, दूसरा पकड़ा जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त दांव–पेच अवसरवादिता को परसाईजी ने 'पाखण्ड का अध्यात्म' में 'प्रेमचन्द की असलियत' नामक निबन्ध में व्यक्त किया है–"प्रेमचन्द जयन्ति लगभग पूरी हो चुकी है। जैनेन्द्र ने चादर उतारकर बक्स में रख दी है। जतन से ओढ़ी थी, जस की तस धर दी है। यह चादरिया वो प्रेमचन्द को ओढाना चाहते थे, मगर प्रेमचन्द फुर्ती से खिसक गये।"

* भाषा–संपादक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान।

उपर्युक्त विश्लेषण से हम ये स्पष्ट कर सकते हैं कि परसाईजी ने 'पाखण्ड का अध्यात्म' संग्रहित निबन्ध एकांगी दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत नहीं हुए हैं बल्कि सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिकता के सन्दर्भ में विसंगतियों को लेकर स्थापित हुए हैं।

परसाईजी ने निबन्धों में व्यंग्य लेखन की कौशलता के साथ विभिन्न क्षेत्रों में तीखा प्रहार किया है। इसे हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

- **राजनैतिक सन्दर्भ में**–"सचमुच परसाईजी का रचना क्षेत्र बहुत व्यापक है। देश का सम्पूर्ण समवर्ती इतिहास, वातावरण और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश तो उपस्थित है ही विश्व का प्रत्येक राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाक्रम और उनके भीतर कार्यशील विभिन्न शक्तियों के घात–प्रतिघात भी मौजूद हैं, जहां वे विश्व की सम्पूर्ण मानवीय चेतना के साथ एकाकार हो जाते हैं। विश्व का एक भी राष्ट्रनायक या राजनेता ऐसा नहीं जिसने मानवीय संघर्ष को बढ़ाने और कमजोर करने में अपनी भूमिका निभाई हो और परसाईजी की दृष्टि के सामने न आया हो । परसाई जी द्वारा रचित 'पाखण्ड का अध्यात्म' में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में साम्राज्यवादी के विरुद्ध जूझने वाले व्यक्तियों के साथ ही उस अमानवीय रीति–नीति का भी पर्दाफाश किया जाता है जो विश्वमानवीयता को युद्ध की मानव संहारक विभीषिकां में झौकती है।"

"मुझसे एक आदमी कह रहा था – क्यों साहब इस बात पर कोई विश्वास करेगा कि इन नेताओं में बहुत से अंग्रेजी राज में देश के लिए जेल गये थे। मैं लड़के से कहता हूँ कि वह जवाब देता है–नहीं बाबूजी वे कोई दूसरे होंगे। ये वे नहीं जो कोई देश के लिए कष्ट उठाये, त्याग करें।"

"वे त्यागी नहीं है' से उठाये गये थे सन्दर्भ आज के नेताओं की कथनी करनी के अन्तर के साथ–साथ उनकी तिकड़म और धोखेबाजी जो चुनावो में होती है को स्पष्ट किया है।

"पाखण्ड का अध्यात्म" में राजनैतिक अव्यवस्था, संसद तथा विधान सभाओं की उपद्रवपूर्ण हास्यास्पदा, लीड़रों की चरित्रहीनता, सौदेबाजी, सिद्धान्तहीनता, दल–बदल, जनता के हितों के प्रति पूर्ण उदासीनता, नौकरशाही, साम्प्रदायिक दंगे, विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा अपने–अपने प्रदर्शनों के लिए किराये के प्रदर्शनकारियों द्वारा निकाले गये झुलूस आदि राजनैतिक विसंगतियों पर परसाईजी ने तीखा प्रहार किया है। ये दल–बदल होने की प्रवृत्ति जनता को गुमराह करती रहती है । ये झूठ बोलते हैं। ये जनता को मूर्ख बनाते हैं। ये एक तरफ इन्दिरा गाँधी को हराने की कोशिश भी कर रहे हैं दूसरी और इन्हें यह लगने लगा है कि सत्ता में हिस्सेदारी उसी के मार्फत आ रही है।"

"भ्रष्टाचार की उद्योगपति के साथ नेताओं का बड़ा पुराना सम्बन्ध रहा है। सारे परिवेश की भ्रष्टता को राजनेताओं ने जिस गहराई के साथ पल्लवित किया है तथा भ्रष्टाचार की पदलिप्सा और सार्थकता की कुत्सित मनोवृत्तियों को–'पाखण्ड का अध्यात्म' में संकलित किया गया है।''

"नेताओं की भाषण–कला, चमचागिरी और घूस लेने की प्रवृत्ति, चंदा हजम कर जाने और टेक्स पचाने की परम्परा तथा अन्य विसंगतियों को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया है।''

सीट सुरक्षित रखने तथा भिखमंगों की प्रवृत्ति–वोट के लिए "मुझसे एक सज्जन बड़े दुखः से कह रहे थे–ये हमारे बड़े–बड़े नेता हैं। हमारे भाग्य विधाता है। पर ये इस तरह बिलबिला रहे हैं जैसे तहसीलदार और नायब तहसीलदार सस्पेंड हो गये हो।"

परसाईजी ने 'पाखण्ड का अध्यात्म' में व्यंग्य लेखन के अन्तर्गत उन्होंने सम्पूर्ण पार्टीयों के सिर से लेकर पाँव तक को नाटकीयता के साथ प्रहार किया है–जनता पार्टी–"जनता पार्टी एक ऐसा प्राणी है जिसे प्रकृति वैचित्र्य कहते हैं । इसका आकार मनुष्य का है, सिर बारहसिंगा का, दिमाग बन्दर का है। मुँह भालू का, दिल खरगोश का, पैर हाथी, पाँव घोड़े का।''

जनसंघ की बनावट–"जनसंघ का रोल सियार का है वह इस जानवर में होकर भी इसमें नहीं है। जनता पार्टी के इस जंगल में जनसंघ सियार हैं। सबको बुद्ध बनाकर–शेर के पास जाकर कहता है–वह आपको जंगल का राजा नहीं मानता। उस टुच्चे की इतनी हिम्मत। फिर हाथी के पास जाकर कहता है– आपका इतना डील–डौल और वह पिद्धी शेर अपने को जंगल का राजा कहता है।"

राजनीति में राजनैतिक अवसरवादिता एवं चापलूसी "राजनीतिक अवसरवाद की पूँजी जब उसी फेफड़े की साँस से बजती है, जिसमें सत्ता का दम हो तब मतवाद सिद्धान्त और आइडियालॉजी का कोई उपयोग नहीं रहता है।''

दो मुंह के व्यक्ति "गांधीवादी असत्य" के प्रयोग में देखिये–"फासिस्टवाद मगरमच्छ की तरह है। संघ का फासिस्टवाद भी मगरमच्छ है । वह एक–एक करके निगलता है।"

निष्कर्षत

उपर्युक्त उदाहरणों से एक तो राजनीतिक पार्टीयों की बनावट देखने को मिलती है तो दूसरी और राजनीति में पाया जाने वाला (दो मुँह की धम्मी) वाला रूप स्पष्ट है।

- **सामाजिक सन्दर्भः** परसाईजी ने निरन्तर विकृत हो रहे सामाजिक परिवेश और उसकी विघटनशील मान्यताओं को भंग कर नयी मूल्य–विधि की स्थापना का प्रयास अपनी व्यंग्य रचनाओं के द्वारा किया है। उनकी व्यंग्य रचनाओं ने एक नये बुद्धिवादी पाठक वर्ग का निर्माण भी किया है जो केवल रंजित ही नहीं होता, उसका चेतन अवचेतन सब कुछ ये सोचने में लीन हो जाता है कि परसाईजी ने सामाजिक दंभ के किस पक्ष का विस्फोट किया है।

परसाईजी के अनुसार वैदिक युग में वर्ण–व्यवस्था का प्रभाव इतना दबावपूर्ण था कि जैसे भी ब्राह्मण कहते थे, सभी नतमस्तक होकर शीरोधार्य करते थे–"पर खबरदार जो वर्ण– व्यवस्था है उसे मानना पड़ेगा। केवल यही धर्म है। वर्ण धर्म है– सामाजिक, आर्थिक शोषण की जो व्यवस्था है इसे मानना ही धर्म है। माना कि तुम नीचे वर्णों के लोगों को दुःख है पर यह पूर्वजन्म के कर्मों का फल है। इस जन्म में पुण्य करो तो अगले जन्म में ब्राह्मण भी बन सकते हो। पुण्य क्या है ? ऊंचे वर्णों की सेवा करो और फल की चाह मत करो। चूँ–चूपड़ मत करो अगले जन्म में सुख मिलेगा।

"बरसों से रामशंबूक का सिर काटते रहे, और आचार्य एकलव्य का अंगूठा कटवाते रहे। इन लोगों को अछूत रखा, गन्दी सेवाएँ कराई–जीवन स्तर गटर में डाल दिया। आत्म–सम्मान छीना। पशुवत इनसे बुरा व्यवहार किया। इनके झौपड़े जलाये। इनकी स्त्रियों से बलात्कार किया।''

सामाजिक बुराईयों में बलात्कार जैसी घटना तो ऊंची जाति वाले नीची जाति की स्त्रियों के लिए एक खिलौना था–"बलात्कार के उस समय नीची जाति की स्त्रियों से खाली बर्तनों और खिलौनों जैसा व्यवहार तथा फायदे और मनोरंजन के लिए हमारी सभ्यता, हमारे रीति– रिवाज, हमारे कानून सब आदमी के बनाये हैं और आदमी ने अपने को ऊंची हालत में रखने तथा नीची जाति की स्त्रियों को अपनी बेदाग भोग–लिप्सा का शिकार बनाना एक आसान सा कार्य समझते थे। ऋषि मुनि चाहे जिस स्त्री से कह देते थे–"शुभे मैं तेरे साथ रमण करना चाहता हूं। और स्त्री धर्म भाव से समर्पण भी कर देती थी। वह डरती थी कि मना करने पर ऋषि उसे भस्म कर देंगे।"

इस प्रकार परसाईजी ने वर्ण–व्यवस्था से लेकर जाति प्रथा का झगड़ा कोई यह सोचता ही नहीं था कि छुआछूत मनुष्य के प्रति घोर पाप है, कि विधवा विवाह नहीं होना नारी जाति के प्रति अन्याय है, कि शूद्र और नारी को वे ही अधिकार मिलने चाहिए जो उच्च वर्ग निश्चित करते हैं। शूद्र जाति के लोग ब्राह्मणों के आमने–सामने से गुजर नहीं सकते थे, अगर कोई भूला–भटका गुजर भी जाता तो बेचारे की हालत बलि के बकरे के समान कर देते थे। एक हरिजन दुल्हा इसी कारण पिटा कि वह यज्ञ के पास से निकल गया "हरिजन को पीटने का यज्ञ" में परसाई जी कह रहे हैं–"हरिजन दुल्हा यज्ञ के कारण पिटा। यज्ञ तथा इस तरह की दूसरी चीजें इसलिए कराई जाती थीं कि समाज उन्हीं पुरानी परम्पराओं में जकड़े रहें। भेदभाव को माने,

ऊंच–नीच को मानें, अंध–विश्वास में जकड़ा रहे। वही मानसिकता बनी रहे, कि हरिजन दुल्हा घोड़े पर बैठे रहे तो ऊंची जाति के लोग भड़ककर कहें–देखो इस चमरे की हिम्मत हमारे सामने घोड़े पर बैठता है।''

निष्कर्षत

हम यही कह सकते हैं कि परसाईजी ने "पाखण्ड का अध्यात्म" में छुआछूत नारी की स्थिति के अलावा, दहेज–प्रथा, बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह एवं बहु विवाह तथा सामाजिक कुरीतियों एवं संपूर्ण सामाजिक विसंगतियों को परसाईजी ने व्यंग्यमयी रचनाओं के द्वारा सामाजिक ताड़ना देने का कार्य एक सशक्त पहरेदार या (फौजी) की तरह अड़िग रहकर किया है।

- **सांस्कृतिक सन्दर्भ में:** "रचनाकार एक मनुष्य होता है। दूसरों की तरह उसके परिवेशगत संस्कार–कुसंस्कार भी होते हैं। विचारधारा के आधार पर उसे उस कुसंस्कारों को काँट–छाँट कर छोड़कर और नयी जगह जोड़कर अनुरूप ढालना होता है। यह कार्य सहज नहीं है, इसलिए उसे पहली लड़ाई इन्हीं से लड़नी होती है। इस जड़ और गतिशील संघर्ष में रचनाकार घायल होकर ठीक–ठाक होता आगे बढ़ता और उतना ही बड़ा होता चलता है जबकि जड़ संस्कारों के दबाव में दबा हुआ और तो और अपनी अस्मिता को घोंघे में बदल लेता है– या जड़ता ही घोंघे का रूप लेकर प्रसन्न रहती है। जड़ पुराने और प्रतिगामी संस्कार जनाभिमुख करने के बजाय जन–विरोधी करके निरीह होते जाने की स्थिति में कैद कर देते हैं।

''"पाखण्ड का अध्यात्म'' में अन्तर्वस्तु के लेखन के स्तर पर परसाईजी ने जिरह और जंग को पचाकर, आत्मसात कर गहरे और फैले हुए, उठे हुए, व्याप्त सांस्कृतिक सामाजिक आयातों तक पहुँच पाने के लिए कबीर–त्यागी, कन्हैयालाल तथा निराला की भाँति संघर्ष किया है। उन्होंने अपने प्रतिगामी संस्कारों के विरुद्ध अर्जित शक्ति से पंजा लड़ाते हुए पछाड़ता है।''

''"पाखण्ड का अध्यात्म" में निरन्तर विकृत हो रहे सामाजिक परिवेश और उसकी विघटनशील मान्यताओं को भंग कर नयी मूल्य–विधि की स्थापना का प्रयास अपनी व्यंग्य रचनाओं के द्वारा बुद्धिवादी वर्ग पर तीखा प्रहार किया है–"आधुनिक सभ्यता की मनुष्य और समाज को जो देन है, उसे अस्वीकार करना सर्वथा भूल होगी, परन्तु इसमें जो कृत्रिम, बनावटीपन दिखावा, ऊपरी चमक, दमक एवं तड़क–भड़क है।" अर्थात् "ये मुँह और मसूर की दाल" वाली कहावत हमारे देशवासियों पर चरितार्थ होने लग गयी। "बिना माइंड के लाइकमाइंड" में परसाई जी जगजीवनराम से कहलवा रहे हैं–'बाबू जगजीवन को सांस्कृतिक क्रांति भी करनी है। उस दिन बहुगुणा के त्याग–पत्र की खबर सुनकर बाबूजी चिल्ला पड़े–अर्स ये बहुगुणा हुआ 'लाइकमाइंडेड' अब कांग्रेस कल्चर को पुनजीवित करना शुरू हो गया। बाबूजी टिकट वंचित और केबिनेट वंचित कांग्रेसियों को अर्स कांग्रेस के अनाथालय में भरती करके कहेंगे लो इसे कहते हैं, कांग्रेस कल्चर द्य वैसे गैर कम्युनिष्ट विरोधी गुटों में सब से ठीक समझदार और संतुलित लोग यही है जो अर्स कांग्रेस में हैं।''

आज भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति और ग्रामीण संस्कृति में शहरी संस्कृति की घुसपैठ और हलचल और विघटन का व्यापक अंकन परसाईजी ने–"पाखण्ड का अध्यात्म" में किया है।

"सांस्कृतिक जीवन के भीतर जिन विसंगतियों और दुरभि सन्धि मूलक अन्तर स्थितियों की संरचना हुई है। उनमें से लगभग सभी रचनाकार की संचेतना का अंग बनी है। इन सभी निबन्धों के विषय तात्कालिक, सन्दर्भ के भीतर से उत्पन्न हुए हैं, किन्तु रचनाकार की संचेतना मर्मभेदी वैज्ञानिक ऐतिहासिक दृष्टि का ऐसा प्रसार निहित है जिसके कारण मात्र वे जीवन रूपों से सम्बद्ध साहित्य राजनीति, धर्म, संस्कृति, परम्परा दर्शन आदि पर ही टिप्पणीयाँ प्रस्तुत नहीं करते अपितु उस व्यापक हो रहे जीवन की सम्भावनाओं और मौजूदा वर्ग समाजी शक्तियों की प्रकृति की ओर भी इंगित करते हैं। जिसके कारण व्यक्ति केन्द्रित दृष्टिकोण न केवल हास्यास्पद बन जाता है। अपितु उसके द्वारा संचालित संपूर्ण रीति–नीति स्पष्ट होती है।'' "मेरे असत्य के रासायनिक प्रयोग चल रहे हैं। मैं मिट्टी से शक्कर बनाने की विधि खोज लूंगा।''

संस्कृति–हिन्दू–मुस्लिम, सिख, ईसाई–कोई भी हो पर "हम दूसरी जातियों पर थूके तो वह अपने ही ऊपर गिरेगा। हमारा सौभाग्य है कि हमारे शंकराचार्य उन्माद पैदा नहीं कर सकते जैसाकि अयातुल्ला और इमाम कर सकते है । शंकराचार्य की इस अक्षमता को हमें बहुत बचाया । पर उन्माद बाला–देवरस तो पैदा कर ही सकते है।"

निष्कर्षत

हम यही कह सकते है कि परसाई जी ने भारतीय संस्कृति का घोर विरोध नहीं किया है, बल्कि उसमें व्याप्त कृत्रिमता, बनावटीपन, दिखावा और उगते–फलगते संस्कारों के विरुद्ध सतर्क सुरक्षा पर ध्यान दिलाया है। परसाई जी की व्यंग्य यात्रा, हास्योन्मुख संस्कारों से ओक्राशोन्मुख रचना क्रियाकलापों तक और फिर वहां से समाज से मुक्ति, उन्मुख आचरण, व्यवहार में प्रवेश कर जाने वाली गतिशीलता परसाई जी को ऐतिहासिक चेतना का अंग बना देती है। "पाखण्ड का अध्यात्म" मैं खुदा की चिड़िया "इस्लाम के कोड़े", "ईश्वर की सरकार", "हल्ला और कलंक तंत्र आदि रचनायंर संग्रहित हैं"।

- **आर्थिक संदर्भ मेंः** व्यक्ति और समाज के लिए अर्थ का अत्यधिक महत्व होता है। आर्थिक परिस्थितियाँ निश्चित ही समाज के मानस को बहुत गहरे अरसे से प्रभावित करती है । पराधीन राष्ट्र में जनता को विभिन्न प्रकार के आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है साथ ही देश के स्वतन्त्र हो जाने पर भी पूँजीपतियों एवं वर्गसंघर्षो, जमींदार, सेठ साहूकारों के द्वारा उत्पन्न आर्थिक विषमताएँ कम न होकर अधिक हो गई थी। किसी भी देश में आर्थिक प्रगति ही रीढ़ की हड्डी होती है क्योंकि बैंकिग प्रणाली आजादी के बाद और भी उजड़ गई–

परसाई जी ने "पाखण्ड का अध्यात्म'' में शोषक वर्ग को खुब फटकारा है–"जब आदमी के पास न करने के लिए खेती हो, न व्यवसाय तब विवश होकर आजीविका के लिए उसके पास सिर्फ एक ही मार्ग रह जाता है वह है नौकरी का, परन्तु नौकरी भी इतनी तुच्छ की साहूकारों के कुत्तों का भोजन पर व्यय भी उस वेतन की तुलना में ज्यादा होता है।"

भारतवर्ष आर्थिक विसंगति, भेद भाव के कारण दो वर्गों तथा दो सम्प्रदायों दो भागों तथा दो खाइयों के साथ–साथ एक "गरीबी का पर्याय बन कर रह गया है।''

परसाई जी ने सम्पूर्ण शोषक वर्ग के सामाजिक आर्थिक प्रभाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–"शोषकों के वर्ग को जब कोई चुनौति देता है, तो उस वर्ग के प्रवक्ता कहते है–यह आदमी खुदा से लड़ रहा है। खुदा को प्राइवेट कहते हैं तथा सम्पत्ति का रक्षक और शोषण का एजेन्ट तभी से बना लिया गया था, जब मनुष्य ने उसके होने ही कल्पना की थी।" "परसाई जी ने शोषित मजदूरों किसानों, गरीबों के प्रति सहानुभुति दर्शाते हुए पूँजीपतियों, मिल–मालिकों, जमींदारों, सूदखोरों मुनाफाखोरों, धन को पानी की तरह बहाकर ऐश करने वालों पर तीखा प्रहार करते हुए कहा है कि यह आर्थिक विषमता निश्चय ही समाज का कोढ़ और दुनिया की सर्वाधिक भयंकर बीमारी है।'' खूनचूसा खाद का तूने अभिष्ट डाल पर बैठा इतराता है कैविलिस्ट कहकर गरीबों को अथवा सामान्य जन का शोषण करने वालों पर प्रहार किया है।"

निष्कर्षत

हम यही कह सकते है कि " धन ही जीवन है। परसाई ने इन उद्धरणों से आर्थिक विषमता का लाभ तो नहीं पहुँचा पाये परन्तु थोड़ा दुःख जरूर सहानुभूति के द्वारा कम कर दिया है और रईसों के जले पर नमक छीड़क दिया है। समाज में व्याप्त आर्थिक अव्यवस्था के कारण गरीबी, वर्ग संघर्ष, साम्प्रदायिकता, चोरी–हत्या डकैती, हमला, नशा तथा आत्महत्या, देहव्यापार, कुकर्म, वेश्यावृति, बाल अपराध, मद्यपान का अत्यधिक सेवन सभी आर्थिक विषमता की पहचान है।

- **धार्मिक सन्दर्भः** भारत की सामाजिक विसंगतियों का एक बहुत बड़ा क्षेत्र धार्मिक अंधविश्वासों और पाखण्डी आडम्बरों से सम्बद्ध है। जाति धर्म और कर्म पर तथा उनके आचरणों पर व्यंग्यमयी रचनाओं की सर्जना तो प्रारम्भ बहुत पहले से ही है परन्तु जीवन के अन्य क्षेत्रों में हुई विकृतियों को तथा धर्म के

बाह्य आडम्बरों को व्यक्त करने का कार्य परसाई जी ने तीखी व्यंजना शक्ति के प्रयोग से किया है। वे कहते है धर्म के क्षेत्र में हुई कमियों का बहुत बड़ा श्रेय पंडितों, काजी और मुल्लाओं को दिया जा सकता है। तथा इन तथाकथित धार्मिक जीवन की मूल विसंगतियों का सीधा रिश्ता मठाधीशों और आडम्बरीयों के कर्मो से हैं।

परसाई जी ने धर्म के ऐसे स्वरूप को मान्यता दी है जो मानवीय है तथा जिसके साथ विवेक और तर्क भी जुड़े थे। उनके किसी प्रकार का दीपावली–पन नहीं था । अपितु उन्होंने तथाकथित धर्म के पण्डों और ठेकेदारों को उनके इस गीदड़मयी कार्य की बिरला की तरह भुरी–भूरी प्रशंसा की है।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने धर्म के स्वरूप पर दृ "श्रेष्ठता की निशानी किसी धर्मगत को मानना या देव विशेष की पूजा करना नहीं बल्कि आचार–शुद्धि और चरित्रमय से शुद्ध है, दूसरी जातियाँ व्यक्ति के आचरण की नकल नहीं करता, बल्कि स्वधर्म में मर जाने को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। ईमानदार है, सत्यवादी है तो वह निश्चय ही श्रेष्ठ है, फिर वह चाहे अमीर वंश का हो या पुक्कस श्रेणी का । कुमानवीय पूर्व जन्म के कर्म का फल है, चरित्राय इस जन्म के कर्म का प्रतीक है। देवता किसी एक जाति की सम्पत्ति नहीं है वो सबकी पूजा के काबिल और अधिकार है।"

"धार्मिक अंधविश्वास उसमें निहित स्वार्थपरताओं पर प्रहार करने की दृष्टि से तथा सच्चे मूल्यों की प्रतिष्ठा करने के लिए ही व्यंग्य का प्रादुर्भाव कबीर, रहीम, बिहारी, सूरदास, तुलसी, आलवार संत के बाद में परसाईजी ने भी किया है। परसाई जी और कबीर दोनों ने कहा है कि कुरान और पुरान का अध्ययन तब तक व्यर्थ है जब तक मनुष्य के अन्तर मन प्रेम का विकास न हो जाए। उन्होंने युगों से चली आ रही नैतिक मान्यताओं को चुनौति दी है और उनके खोखलेपन को व्यंग्य के माध्यम से प्रसारित किया है।'' कबीर सच्चे अर्थो में मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थे और उनका उद्देश्य मनुष्यों में आपसी प्रेम का विकास था। उन्होंने पढ़े–लिखे लोगों किन्तु प्रेम से शून्यों मनुष्यों को पंडित मानने से मना किया था।''

उपर्युक्त सन्दर्भो से वास्तविकता अपने नग्न रूप में है तथा वह उन्माद के साथ डांस कर रही है, निर्देशक परसाई जी द्वारा धार्मिक कूपमडंको संरक्षकों, ठेकेदार, आडम्बरहीन ढकोसला दिखावा, पैसा कमाने की तरकीब लोगों में आत्मविश्वास जगा के आत्मघात करने की कला सभी कुछ परसाई जी ने समाज को अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रदत्त किया है। ध्यान पूर्वक अध्ययन किया है। परसाई ने लिखा है "मैं सुधार के लिए नहीं लिखता, बल्कि स्वयं के लिए लिखता हूँ। वाह खरी–खोटी कहने वाले परसाई जी भी किसी छाया के पीछे हैं उस छाया का प्रभाव इन्हें "और अन्त में 'कल्पना के सम्पादक के रूप में परसाई जी ने कहा था कि मुझे सपने में जैनेन्द्र दिखते है वाकई ये उक्ति सही नहीं हो सकती क्योंकि अक्सर ऐसे साहित्यकारों को कोई न कोई दिखता रहता है। जैनेन्द्र ने कहा होगा–परसाई छोड़ अब समाज धर्म राजनीति, साम्प्रदायिक का पीछा लंगोट कसके और परिवार से विदा लेकर जल्दी मेरे बताये मार्ग पर आ जा वर्ना काका हाथरसी आजकल भूत बनकर पीछा करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुकुरमुता – निराला, (1942)
2. भारतीय अर्थव्यवस्था – ओमप्रकाश केला
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि – डॉ. भोलानाथ तिवारी
4. कबीर का धर्म और समाज की आलोचना – भागीरथ मिश्र
5. कबीर बानी – डॉ. भागीरथ मिश्र, 1984
6. कबीर साखी – डॉ. सावित्री शुक्ल
7. गद्यावली की भूमिका – डॉ. नरेन्द्र भानावत, (1980)
8. साहित्यिक निबन्ध – राजानाथ शर्मा, 1971

9. काका के कारतूस – काका हाथरसी
10. भाषा–विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
11. रूप दर्शन – हरिकृष्ण प्रेमी
12. हास्य की रूपरेखा – डॉ. एस.पी. खत्री, (1956)
13. हिन्दी साहित्य में विविधवाद – डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल
14. भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाट्य साहित्य – डॉ. भानुदेव शुक्ल
15. व्यंग्य का स्वरूप डॉ. वीरेन्द्र मेहन्दीरत्ता
16. साहित्य दर्पण – आचार्य विश्वनाथ
17. आलोचना का इतिहास – डॉ0 शिवदास सिंह चौहान
18. बेईमानी की परत – (1965)
19. सदाचार का ताबीज – (1967)
20. शिकायत मुझे भी है – (1970)
21. पाखण्ड का अध्यात्म – (1982)
22. विकलांग श्रद्धा का दौर – (1981)
23. वैष्णव की फिसलन – (1976)
24. पगडण्डियों का जमाना – (1966)
25. अपनी–अपनी बीमारी – (1978)

❖◆❖